श्रीमद् भागवत का यह सार
भगवद् भक्ति ही आधार

श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

कुंती स्तुति

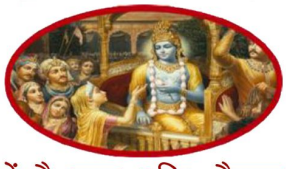

कुंती स्तुति में है प्रचुर भक्ति, वैराग्य और ज्ञान ।
परम नियंता से मांग रही,दुख देने का वरदान ।।

नारायणं(न्) नमस्कृत्य, नरं(ञ्) चैव नरोत्तमम्।
देवीं(म्) सरस्वतीं(वँ) व्यासं(न्), ततो जयमुदीरयेत्॥

नामसङ्कीर्तनं(यँ) यस्य, सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्, तं(न्) नमामि हरिं(म्) परम्॥

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्
प्रथमः स्कन्धः
॥ अथाष्टमोऽध्यायः ॥

सूत उवाच
अथ ते सम्परेतानां(म्), स्वानामुदकमिच्छताम् ।
दातुं(म्) सकृष्णा गङ्गायां(म्), पुरस्कृत्य ययुः(स्) स्त्रियः ॥ 1॥

स्वाना+मुदक+मिच्+छताम्

सूतजी कहते हैं- इसके बाद पाण्डव श्रीकृष्ण के साथ जलांजलि के इच्छुक मरे हुए स्वजनों का तर्पण करने के लिये स्त्रियों को आगे करके गंगा तट पर गये।

ते निनीयोदकं(म्) सर्वे, विलप्य च भृशं(म्) पुनः ।
आप्लुता हरिपादाब्ज- रजः(फ्)पूतसरिज्जले ॥ 2॥

निनी+ योदकं(म्), रजः(फ्)+ पूत+ सरिज् +जले

वहाँ उन सब ने मृत बन्धुओं को जल दान दिया और उनके गुणों का स्मरण करके बहुत विलाप किया। तदनन्तर भगवान के चरण-कमलों की धूलि से पवित्र गंगा जल में पुनःस्नान किया।

तत्रासीनं(ङ्) कुरुपतिं(न्), धृतराष्ट्रं(म्) सहानुजम् ।

गान्धारीं(म्) पुत्रशोकार्तां(म्), पृथां(ङ्) कृष्णां(ञ्) च माधवः ॥ 3॥

पुत्रशो+ कार्तां(म्)

सान्त्वयामास मुनिभिर्- हतबन्धूञ्छुचार्पितान् ।

भूतेषु कालस्य गतिं(न्), दर्शयन्नप्रतिक्रियाम् ॥ 4॥

सान्+ त्वया+ मास, हत+ बन्धून्+ छुचार्+ पितान्, दर्शयन्+ नप्रति +क्रियाम्

वहाँ अपने भाइयों के साथ कुरुपति महाराज युधिष्ठिर, धृतराष्ट्र, पुत्र शोक से व्याकुल गान्धारी, कुन्ती और द्रौपदी-सब बैठकर मरे हुए स्वजनों के लिये शोक करने लगे। भगवान श्रीकृष्ण ने धौम्यादि मुनियों के साथ उनको सान्त्वना दी और समझाया कि संसार के सभी प्राणी काल के अधीन हैं, मोत से किसी को कोई बचा नहीं सकता।

साधयित्वाजातशत्रोः(स्),स्वं(म्) राज्यं(ङ्)कितवैर्हृतम् ।

घातयित्वासतो राज्ञः(ख्), कचस्पर्शक्षतायुषः ॥ 5॥

कितवैर्+ हृतम् , कचस्पर्श+ क्षतायुषः

इस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण ने अजात शत्रु महाराज युधिष्ठिर को उनका वह राज्य, जो धूर्तों ने छल से छीन लिया था, वापस दिलाया तथा द्रौपदी के केशों का स्पर्श करने से जिनकी आयु क्षीण हो गयी थी, उन दुष्ट राजाओं का वध कराया।

याजयित्वाश्वमेधैस्तं(न्), त्रिभिरुत्तमकल्पकैः ।

तद्यशः(फ्) पावनं(न्) दिक्षु, शतमन्योरिवातनोत् ॥ 6॥

याजयित्वाश् + वमे+ धैस्तं(न्), त्रिभिरुत्+ तमकल्पकैः, शत+मन्यो+रिवा+ तनोत्

साथ ही युधिष्ठिर के द्वारा उत्तम सामग्रियों से तथा पुरोहितों से तीन अश्वमेध यज्ञ कराये। इस प्रकार युधिष्ठिर के पवित्र यश को सो यज्ञ करने वाले इन्द्र के यश की तरह सब ओर फैला दिया।

आमन्त्र्य पाण्डुपुत्रां(म्)श्च, शैनेयोद्धवसं(यँ)युतः।

द्वैपायनादिभिर्विप्रैः(फ्),पूजितैः(फ्) प्रतिपूजितः ॥ 7॥

शैनेयोद्+ धव+ सं(यँ)युतः, द्वैपायना+ दिभिर्+ विप्रैः

गन्तुं(ङ्) कृतमतिर्ब्रह्मन् , द्वारकां(म्) रथमास्थितः ।

उपलेभेऽभिधावन्ती- मुत्तरां(म्) भयविह्वलाम् ॥ 8॥

कृत+ मतिर्+ ब्रह्मन्, उपलेभेऽ+ भिधा+ वन्ती, मुत्+ तरां(म्), भय+ विह्+ वलाम्

इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण ने वहाँ से जाने का विचार किया। उन्होंने इसके लिये पाण्डवों से विदा ली और व्यास आदि ब्राह्मणों का सत्कार किया। उन लोगों ने भी भगवान का बड़ा ही सम्मान किया। तदनन्तर सात्यकि और उद्धव के साथ द्वारका जाने के लिये वे रथ पर सवार हुए। उसी समय उन्होंने देखा कि उत्तरा भय से विह्वल हो कर सामने से दौड़ी चली आ रही है।

उत्तरोवाच

पाहि पाहि महायोगिंन्- देवदेव जगत्पते ।

नान्यं(न्) त्वदभयं(म्) पश्ये ,यत्र मृत्युः(फ्) परस्परम् ॥ 9॥

त्वद+ भयं(म्)

उत्तरा ने कहा—देवाधिदेव ! जगदीश्वर ! आप महायोगी हैं। आप मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। आपके अतिरिक्त इस लोक में मुझे अभय देने वाला अन्य और कोई नहीं है; क्योंकि यहाँ सभी परस्पर एक-दूसरे की मृत्यु के निमित्त बन रहे हैं।

अभिद्रवति मामीश, शरस्तप्तायसो विभो ।

कामं(न्) दहतु मां(न्) नाथ, मा मे गर्भो निपात्यताम् ॥ 10॥

शरस्+ तप्ता+ यसो, निपात् + यताम्

हे प्रभो! आप सर्व-शक्तिमान् हैं। यह दहकते हुए लोहे का बाण मेरी ओर दौड़ा आ रहा है। हे स्वामी ! यह मुझे भले ही जला डाले, परन्तु मेरे गर्भ को नष्ट न करे—ऐसी कृपा कीजिये।

सूत उवाच

उपधार्य वचस्तस्या, भगवान् भक्तवत्सलः ।

अपाण्डवमिदं(ङ्) कर्तुं(न्), द्रौणेरस्त्रमबुध्यत ॥ 11॥

अपाण्डव+ मिदं(ङ्), द्रौणे+ रस्त्र+ मबुध्यत

सूतजी कहते हैं—भक्तवत्सल भगवान श्रीकृष्ण उसकी बात सुनते ही जान गये कि अश्वत्थामा ने पाण्डवों के वंश को निर्बीज करने के लिये ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया है।

तर्ह्येवाथ मुनिश्रेष्ठ, पाण्डवाः(फ्) पञ्च सायकान् ।

आत्मनोऽभिमुखान्दीप्ता- नालक्ष्यास्त्राण्युपाददुः ॥ 12॥

आत्मनोऽभि+ मुखान् + दीप्ता, नालक्ष्यास् +त्राण्यु + पाददुः

हे शौनकजी ! उसी समय पाण्डवों ने भी देखा कि जलते हुए पाँच बाण हमारी ओर आ रहे हैं। इसलिये उन्होंने भी अपने-अपने अस्त्र उठा लिये।

व्यसनं(वँ) वीक्ष्य तत्तेषा- मनन्यविषयात्मनाम् ।

सुदर्शनेन स्वास्त्रेण, स्वानां(म्) रक्षां(वँ) व्यधाद्विभुः ॥ 13॥

मनन्य+ विषयात् + मनाम्, व्यधाद् + विभुः

सर्वशक्तिमान भगवान श्रीकृष्ण ने अपने अनन्य प्रेमियों पर, शरणागत भक्तों पर बहुत बड़ी विपत्ति आयी जानकर अपने निज अस्त्र सुदर्शन-चक्र से उन निज जनों की रक्षा की।

अन्तः(स्)स्थः(स्) सर्वभूताना- मात्मा योगेश्वरो हरिः ।

स्वमाययाऽऽवृणोद्गर्भं(वँ्), वैराट्याः(ख्) कुरुतन्तवे ॥ 14॥

स्वमाययाऽऽ+ वृणोद्+ गर्भं(म्)

योगेश्वर श्रीकृष्ण समस्त प्राणियों के हृदय में विराज मान आत्मा हैं। उन्होंने उत्तरा के गर्भ को पाण्डवों की वंश-परम्परा चलाने के लिये अपनी माया के कवच से ढक दिया।

यद्यप्यस्त्रं(म्) ब्रह्मशिरस्- त्वमोघं(ञ्) चाप्रतिक्रियम् ।

वैष्णवं(न्) तेज आसाद्य, समशाम्यद् भृगूद्वह ॥ 15॥

यद्यप्+ यस्त्रं(म्), भृगूद्+ वह

हे शौनकजी ! यद्यपि ब्रह्मास्त्र अमोघ है और उसके निवारण का कोई उपाय भी नहीं है, फिर भी भगवान श्रीकृष्ण के तेज के सामने आकर वह शान्त हो गया।

मा मं(म्)स्था ह्येतदाश्चर्यं(म्),सर्वाश्चर्यमयेऽच्युते ।

य इदं(म्) मायया देव्या, सृजत्यवति हन्त्यजः ॥ 16॥

सर्वाश्चर्य+ मयेऽच्युते, हन्+ त्यजः

यह कोई आश्चर्य की बात नहीं समझनी चाहिये; क्योंकि भगवान तो सर्वाश्चर्यपूर्ण है, वे ही अपनी निज शक्ति माया से स्वयं अजन्मा होकर भी इस संसार का सर्जन, रक्षा और संहार करते हैं।

ब्रह्मतेजोविनिर्मुक्तै- रात्मजैः(स्) सह कृष्णया ।

प्रयाणाभिमुखं(ङ्) कृष्ण- मिदमाह पृथा सती ॥ 17॥

ब्रह्म+ तेजो+ विनिर्+ मुक्तै, प्रयाणा+ भिमुखं(ङ्)

जब भगवान श्रीकृष्ण जाने लगे, तब ब्रह्मास्त्र की ज्वाला से मुक्त अपने पुत्रों और द्रौपदी के साथ सती कुन्ती ने भगवान श्रीकृष्ण की इस प्रकार स्तुति की।

कुन्त्युवाच

नमस्ये पुरुषं(न्) त्वाऽऽद्य- मीश्वरं(म्) प्रकृतेः(फ्) परम् ।

अलक्ष्यं(म्) सर्वभूताना- मन्तर्बहिरवस्थितम् ॥ 18॥

मन्तर् + बहि+ रवस्थितम्

कुन्ती ने कहा-आप समस्त जीवों के बाहर और भीतर एक रस स्थित हैं, फिर भी इन्द्रियों और वृत्तियों

से देखे नहीं जाते; क्योंकि आप प्रकृति से परे आदिपुरुष परमेश्वर हैं। मैं आपको नमस्कार करती हूँ।

मायाजवनिकाच्छन्न- मज्ञाधोक्षजमव्ययम् ।

न लक्ष्यसे मूढदृशा, नटो नाट्यधरो यथा ॥ 19॥

माया + जवनिकाच् + छन्न, मज्ञा+ धोक्षज+ मव्ययम्

इन्द्रियों से जो कुछ जाना जाता है, उसकी तह में आप विद्यमान रहते हैं और अपनी ही माया के परदे से अपने को ढके रहते हैं। मैं अबोध नारी आप अविनाशी पुरुषोत्तम को भला, कैसे जान सकती हूँ ? जैसे मूढ़ लोग दूसरा भेष धारण किये हुए नट को प्रत्यक्ष देखकर भी नहीं पहचान सकते, वैसे ही आप दीखते हुए भी नहीं दीखते।

तथा परमहं(म्)सानां(म्), मुनीनाममलात्मनाम् ।

भक्तियोगविधानार्थं(ङ्),कथं(म्) पश्येम हि स्त्रियः ॥ 20॥

मुनीना + ममलात् + मनाम्, भक्ति+ योग+ विधा+ नार्थं(ङ्)

आप शुद्ध हृदय वाले विचार शील जीवन मुक्त परमहंसों के हृदय में अपनी प्रेममयी भक्ति का सृजन करने के लिये अवतीर्ण हुए हैं। फिर हम अल्पबुद्धि स्त्रियाँ आपको कैसे पहचान सकती हैं?

कृष्णाय वासुदेवाय, देवकीनन्दनाय च ।

नन्दगोपकुमाराय, गोविन्दाय नमो नमः ॥ 21॥

नन्दगोप+ कुमाराय

आप श्रीकृष्ण, वासुदेव, देवकीनन्दन, नन्द-गोप के लाड़ले लाल गोविन्द को हमारा बारंबार प्रणाम है।

नमः(फ्) पङ्कजनाभाय, नमः(फ्) पङ्कजमालिने ।

नमः(फ्) पङ्कजनेत्राय, नमस्ते पङ्कजाङ्घ्रये ॥ 22॥

पङ्कजाङ्+ घ्रये

जिन की नाभि से ब्रह्मा का जन्मस्थान कमल प्रकट हुआ है, जो सुन्दर कमलों की माला धारण करते हैं, जिनके नेत्र कमल के समान विशाल और कोमल हैं, जिनके चरण-कमलों में कमल का चिह्न है—श्रीकृष्ण! ऐसे आपको मेरा बार-बार नमस्कार है।

यथा हृषीकेश खलेन देवकी,

कं(म्)सेन रुद्धातिचिरं(म्) शुचार्पिता ।

विमोचिताहं(ञ्) च सहात्मजा विभो,

त्वयैव नाथेन मुहुर्विपद्गणात् ॥ 23॥

रुद्धा+ तिचिरं(म्), मुहुर् +विपद् +गणात्

विषान्महाग्नेः(फ्) पुरुषाददर्शना-

दसत्सभाया वनवासकृच्छ्रतः ।

मृधे मृधेऽनेकमहारथास्त्रतो,

द्रौण्यस्त्रतश्चास्म हरेऽभिरक्षिताः ॥ 24॥

विषान् + महाग्नेः(फ्), वनवास+ कृच्+ छ्रतः,

मृधेऽनेक+ महा+रथास्+ त्रतो, द्रौण्यस्+त्रतश्+ चास्म

हे हृषीकेश ! जैसे आपने दुष्ट कंस के द्वारा कैद की हुई और चिरकाल से शोकग्रस्त देवकी की रक्षा की थी, वैसे ही पुत्रों के साथ मेरी भी आपने बार-बार विपत्तियों से रक्षा की है। आप ही हमारे स्वामी हैं। आप सर्वशक्तिमान् हैं। हे श्रीकृष्ण ! कहाँ तक गिनाऊँ—विष से, लाक्षागृह की भयानक आग से, हिडिम्बाआदि राक्षसों की दृष्टि से, दुष्टों की द्यूत-सभा से, वनवास की विपत्तियों से और अनेक बार के युद्धों में अनेक महारथियों के शस्त्रास्त्रों से और अभी-अभी इस अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से भी आपने ही हमारी रक्षा की है।

विपदः(स्) सन्तु नः(श्) शश्वत्- तत्र तत्र जगद्गुरो ।

भवतो दर्शनं(यँ) यत्स्या- दपुनर्भवदर्शनम् ॥ 25॥

दपुनर् + भवदर्शनम्

हे जगद्गुरु ! हमारे जीवन में सर्वदा पद-पदपर विपत्तियाँ आती रहें; क्योंकि विपत्तियों में ही निश्चितरूप से आपके दर्शन हुआ करते हैं और आपके दर्शन हो जाने पर फिर जन्म-मृत्यु के चक्कर में नहीं आना पड़ता।

जन्मैश्वर्यश्रुतश्रीभि- रेधमानमदः(फ्) पुमान् ।

नैवार्हत्यभिधातुं(वँ) वै, त्वामकिञ्चनगोचरम् ॥ 26॥

जन्मैश् + वर्य+श्रुत+श्रीभि, नैवार् + हत्यभि+ धातुं(वँ), त्वा+मकिञ्च+नगोचरम्

ऊँचे कुल में जन्म, ऐश्वर्य, विद्या और सम्पत्ति के कारण जिसका घमंड बढ़ रहा है, वह मनुष्य तो आपका नाम भी नहीं ले सकता; क्योंकि आप तो उन लोगों को दर्शन देते हैं, जो अकिंचन हैं।

नमोऽकिञ्चनवित्ताय, निवृत्तगुणवृत्तये ।

आत्मारामाय शान्ताय, कैवल्यपतये नमः ॥ 27॥

नमोऽ+ किञ्चन+ वित् + ताय, निवृत्+ तगुण+वृत्+ तये

आप निर्धनों के परम धन हैं। माया का प्रपंच आपका स्पर्श भी नहीं कर सकता। आप अपने-आप में ही विहार करनेवाले, परम शान्तस्वरूप हैं। आप ही कैवल्य मोक्ष के अधिपति हैं। आपको मैं बार-बार नमस्कार करती हूँ।

मन्ये त्वां(ङ्) कालमीशान- मनादिनिधनं(वँ) विभुम् ।

समं(ञ्) चरन्तं(म्) सर्वत्र, भूतानां(यँ) यन्मिथः(ख्) कलिः ॥ 28॥

मना+ दिनिधनं(म्)

मैं आपको अनादि, अनन्त, सर्वव्यापक, सबके नियन्ता, कालरूप परमेश्वर समझती हूँ। संसार के समस्त पदार्थ और प्राणी आपस में टकराकर विषमता के कारण परस्पर विरुद्ध हो रहे हैं, परन्तु आप सब में समान रूप से विचर रहे हैं।

न वेद कश्चिद्भगवं(म्)श्चिकीर्षितं(न्),

तवेहमानस्य नृणां(वँ) विडम्बनम् ।

न यस्य कश्चिद्दयितोऽस्ति कर्हिचिद् ,

द्वेष्यश्च यस्मिन् विषमा मतिर्नृणाम् ॥ 29॥

कश्चिद्+ भगवं(व्)श्+ चिकीर्षितं(न्), कश्चिद्+ दयितोस्ति, कर्+ हिचिद्

हे भगवान! आप जब मनुष्यों के जैसी लीला करते हैं, तब आप क्या करना चाहते हैं—यह कोई नहीं जानता। आपका कभी कोई न प्रिय है और न अप्रिय। आपके सम्बन्ध में लोगों की बुद्धि ही विषम हुआ करती है।

जन्म कर्म च विश्वात्मन्-नजस्याकर्तुरात्मनः ।

तिर्यङ्नृषिषु यादः(स्)सु, तदत्यन्तविडम्बनम् ॥ 30॥

तिर्यङ्नृ+षिषु , तदत् +यन्त + विडम् +बनम्

आप विश्व के आत्मा हैं, विश्वरूप हैं। न आप जन्म लेते हैं और न ही कर्म करते हैं। फिर भी पशु-पक्षी, मनुष्य, ऋषि, जलचर आदि में आप जन्म लेते हैं और उन योनियों के अनुरूप दिव्य कर्म भी करते हैं। यह आपकी लीला ही तो है।

गोप्याददे त्वयि कृतागसि दाम तावद्,

या ते दशाश्रुकलिलाञ्जनसम्भ्रमाक्षम् ।

वक्त्रं(न्) निनीय भयभावनया स्थितस्य,

सा मां(वँ) विमोहयति भीरपि यद्बिभेति ॥ 31॥

दशा+ श्रुकलि+ लाञ्जन+ सम्भ्र+ माक्षम्, यद्+ बिभेति

जब बचपन में आपने दूध की मटकी फोडक़र यशोदा मैया को खिझा दिया था और उन्होंने आपको बाँधने के लिये हाथ में रस्सी ली थी, तब आपकी आँखों में आँसू छलक आये थे, काजल कपोलों पर बह चला था, नेत्र चंचल हो रहे थे और भय की भावना से आपने अपने मुख को नीचे की ओर झुका लिया था ! आपकी उस दशा का—लीला-छबि का ध्यान करके मैं मोहित हो जाती हूँ। भला, जिससे भय भी भय मानता है, उसकी यह दशा !

केचिदाहुरजं(ञ्) जातं(म्), पुण्यश्लोकस्य कीर्तये ।

यदोः(फ्) प्रियस्यान्ववाये, मलयस्येव चन्दनम् ॥ 32॥

पुण्यश्+ लोकस्य, प्रियस् + यान् + ववाये

आपने अजन्मा होकर भी जन्म क्यों लिया है, इसका कारण बतलाते हुए कोई-कोई महापुरुष यों कहते हैं कि जैसे मलयाचल की कीर्ति का विस्तार करने के लिये उसमें चन्दन प्रकट होता है, वैसे ही अपने प्रिय भक्त पुण्यश्लोक राजा यदु की कीर्ति का विस्तार करने के लिये ही आपने उनके वंश में अवतार ग्रहण किया है।

अपरे वसुदेवस्य, देवक्यां(यँ) याचितोऽभ्यगात् ।

अजस्त्वमस्य क्षेमाय, वधाय च सुरद्विषाम् ॥ 33॥

अजस् + त्वमस्य, सुरद्+ विषाम्

दूसरे लोग यों कहते हैं कि वसुदेव और देवकी ने पूर्वजन्म में आपसे यही वरदान प्राप्त किया था, इसीलिये आप अजन्मा होते हुए भी जगत के कल्याण और दैत्यों के नाश के लिये उनके पुत्र बने हैं।

भारावतारणायान्ये, भुवो नाव इवोदधौ ।

सीदन्त्या भूरिभारेण, जातो ह्यात्मभुवार्थितः ॥ 34॥

ह्यात्म+ भुवार्+ थितः

कुछ और लोग यों कहते हैं कि यह पृथ्वी दैत्यों के अत्यन्त भार से समुद्र में डूबते हुए जहाज की तरह डगमगा रही थी-पीड़ित हो रही थी, तब ब्रह्मा की प्रार्थना से उसका भार उतार ने के लिये ही आप प्रकट हुए।

भवेऽस्मिन् क्लिश्यमानाना- मविद्याकामकर्मभिः ।

श्रवणस्मरणार्हाणि, करिष्यन्निति केचन ॥ 35॥

क्लिश्य+मानाना, श्रवणस् + मरणार् + हाणि, करिष्यन् + निति

कोई महापुरुष यों कहते हैं कि जो लोग इस संसार में अज्ञान, कामना और कर्मों के बन्धन में जकड़े हुए पीड़ित हो रहे हैं, उन लोगों के लिये श्रवण और स्मरण करने योग्य लीला करने के विचार से ही आपने अवतार ग्रहण किया है।

शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्त्यभीक्ष्णशः(स्),

स्मरन्ति नन्दन्ति तवेहितं(ञ्) जनाः ।

त एव पश्यन्त्यचिरेण तावकं(म्),

भवप्रवाहोपरमं(म्) पदाम्बुजम् ॥ 36॥

गृणन्त्य+ भीक्ष्णशः, पश्यन्त्य+ चिरेण, भव+ प्रवाहो+ परमं(म्)

भक्तजन बार-बार आपके चरित्र का श्रवण, गान, कीर्तन एवं स्मरण करके आनन्दित होते रहते हैं; वे ही अविलम्ब आपके उस चरण कमलों का दर्शन कर पाते हैं; जो जन्म-मृत्यु के प्रवाह को सदा के लिये रोक देता है।

अप्यद्य नस्त्वं(म्) स्वकृतेहितं प्रभो,

जिहाससि स्वित्सुहृदोऽनुजीविनः ।

येषां(न्) न चान्यद्भवतः(फ्) पदाम्बुजात्,

परायणं(म्) राजसु योजितां(म्)हसाम् ॥ 37॥

स्वित्+ सुहृदोऽ+ नुजीविनः, चान्यद्+ भवतः(फ्)

हे भक्तवाञ्छाकल्पतरु प्रभो ! क्या अब आप अपने आश्रित और सम्बन्धी हम लोगों को छोडक़र जाना चाहते हैं ? आप जानते हैं कि आपके चरण कमलों के अतिरिक्त हमें और किसी का सहारा नहीं है। पृथ्वी के राजाओं के तो हम यों ही विरोधी हो गये हैं।

के वयं(न्) नामरूपाभ्यां(यँ),यदुभिः(स्) सह पाण्डवाः ।

भवतोऽदर्शनं(यँ) यर्हि, हृषीकाणामिवेशितुः ॥ 38॥

हृषी+ काणा+ मिवेशितुः

जैसे जीव के बिना इन्द्रियाँ शक्तिहीन हो जाती हैं, वैसे ही आपके दर्शन बिना यदु वंशियों के और हमारे पुत्र पाण्डवों के नाम तथा रूप का अस्तित्व ही क्या रह जाता है?

नेयं(म्) शोभिष्यते तत्र, यथेदानीं(ङ्) गदाधर ।

त्वत्पदैरङ्किता भाति, स्वलक्षणविलक्षितैः ॥ 39॥

त्वत् + पदै+रङ्किता, स्व+लक्षण+ विलक्षितैः

हे गदाधर! आपके विलक्षण चरण चिह्नों से चिह्नित यह कुरुजांगल-देश की भूमि आज जैसी शोभायमान हो रही है, वैसी आपके चले जाने के बाद न रहेगी।

इमे जनपदाः(स्) स्वृद्धाः(स्),सुपक्वौषधिवीरुधः ।

वनाद्रिनद्युदन्वन्तो, ह्येधन्ते तव वीक्षितैः ॥ 40॥

सुपक् +वौषधि + वीरुधः, वनाद्रि+ नद्यदन् + वन्तो

आपकी दृष्टि के प्रभाव से ही यह देश पकी हुई फसल तथा लता-वृक्षों से समृद्ध हो रहा है। ये वन, पर्वत, नदी और समुद्र भी आपकी दृष्टि से ही वृद्धि को प्राप्त हो रहे हैं।

अथ विश्वेश विश्वात्मन्, विश्वमूर्ते स्वकेषु मे ।

स्नेहपाशमिमं(ञ्) छिन्धि, दृढं(म्) पाण्डुषु वृष्णिषु ॥ 41॥

स्नेह+पाश+मिमं(ञ्)+छिन्धि

आप विश्व के स्वामी हैं, विश्व के आत्मा हैं और विश्वरूप हैं। यदुवंशियों और पाण्डवों में मेरी बड़ी ममता हो गयी है। आप कृपा करके स्वजनों के साथ जोड़े हुए इस स्नेह की दृढ़ फाँसी को काट दीजिये।

त्वयि मेऽनन्यविषया, मतिर्मधुपतेऽसकृत् ।

रतिमुद्वहतादद्धा, गङ्गेवौघमुदन्वति ॥ 42॥

मतिर् +मधुपतेऽ+ सकृत् , रति + मुद् + वहता+दद्धा ,गङ्गे+वौध + मुदन्वति

हे श्रीकृष्ण! जैसे गंगा की अखण्ड धारा समुद्र में गिरती रहती है, वैसे ही मेरी बुद्धि किसी दूसरी ओर न जाकर आपसे ही निरन्तर प्रेम करती रहे।

श्रीकृष्ण कृष्णसख वृष्ण्यृषभावनिध्रुग्-

राजन्यवं(म्)शदहनानपवर्गवीर्य ।

गोविन्द गोद्विजसुरार्तिहरावतार,

योगेश्वराखिलगुरो भगवन्नमस्ते ॥ 43॥

वृष्ण्यृषभा+ वनिध्रुग् ,राजन्+ यवं(म्)श+ दहना+ नपवर्ग+वीर्य

गोद्विज+ सुरार्+ तिहरा+ वतार, योगेश्वरा+ खिलगुरो

हे श्रीकृष्ण! अर्जुन के प्यारे सखा! यदुवंशशिरोमणि ! आप पृथ्वी के भार रूप राजवेशधारी दैत्यों को जलाने के लिये अग्निस्वरूप हैं। आपकी शक्ति अनन्त है। हे गोविन्द! आपका यह अवतार गौ, ब्राह्मण और देवताओं का दुःख मिटाने के लिये ही है। हे योगेश्वर ! चराचर के गुरु भगवान! मैं आपको नमस्कार करती हूँ।

सूत उवाच

पृथयेत्थं(ङ्) कलपदैः(फ्), परिणूताखिलोदयः ।

मन्दं(ञ्) जहास वैकुण्ठो, मोहयन्निव मायया ॥ 44॥

परिणूता+ खिलोदयः, मोहयन् + निव

सूतजी कहते हैं-इस प्रकार कुन्ती ने बड़े मधुर शब्दों में भगवान की अधिकांश लीलाओंका वर्णन किया। यह सब सुनकर भगवान श्रीकृष्ण अपनी माया से उसे मोहित करते हुए मन्द-मन्द मुसकराने लगे।

तां(म्) बाढमित्युपामन्त्र्य, प्रविश्य गजसाह्वयम् ।

स्त्रियश्च स्वपुरं(यँ) यास्यन्, प्रेम्णा राज्ञा निवारितः ॥ 45॥

बाढमित्+ युपा+ मन्त्र्य, गजसाह् + वयम्

उन्होंने कुन्ती से कह दिया-'अच्छा ठीक है' और रथ के स्थान से वे हस्तिनापुर लौट आये। वहाँ कुन्ती और सुभद्रा आदि देवियों से विदा लेकर जब वे जाने लगे, तब राजा युधिष्ठिर ने बड़े प्रेम से उन्हें रोक लिया।

व्यासाद्यैरीश्वरेहाज्ञैः(ख्), कृष्णेनाद्भुतकर्मणा ।

प्रबोधितोऽपीतिहासैर्-नाबुध्यत शुचार्पितः ॥ 46॥

व्यासा+ द्यैरीश्+ वरेहाज्ञैः(ख्), कृष्णेनाद्+ भुतकर्मणा, प्रबोधितोऽ+पीति+हासैर्

राजा युधिष्ठिर को अपने भाई-बन्धुओं के मारे जाने का बड़ा शोक हो रहा था। भगवान की लीला का मर्म जानने वाले व्यास आदि महर्षियों ने और स्वयं अद्भुत चरित्र करने वाले भगवान श्रीकृष्ण ने भी अनेकों इतिहास कहकर उन्हें समझाने की बहुत चेष्टा की; परंतु उन्हें सान्त्वना न मिली, उनका शोक न मिटा।

आह राजा धर्मसुतश्- चिन्तयन् सुहृदां(वँ) वधम् ।

प्राकृतेनात्मना विप्राः(स्), स्नेहमोहवशं(ङ्) गतः ॥ 47॥

प्राकृते+ नात्मना, स्नेह+ मोह+ वशं(ङ्)

अहो मे पश्यताज्ञानं(म्),हृदि रूढं(न्) दुरात्मनः ।

पारक्यस्यैव देहस्य, बह्व्यो मेऽक्षौहिणीर्हताः ॥ 48॥

पारक् + यस्यैव, मेऽक्षौ+ हिणीर् + हताः

हे शौनकादि ऋषियों ! धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर को अपने स्वजनों के वध से बड़ी चिन्ता हुई। वे अविवेकयुक्त चित्त से स्नेह और मोह के वश में होकर कहने लगे—भला, मुझ दुरात्मा के हृदय में बद्धमूल हुए इस अज्ञान को तो देखो; मैंने सियार-कुत्तों के आहार ऐसे, इस अनात्मा शरीर के लिये अनेक अक्षौहिणी सेना का नाश कर डाला।

बालद्विजसुहृन्मित्र-पितृभ्रातृगुरुद्रुहः ।

न मे स्यान्निरयान्मोक्षो, ह्यपि वर्षायुतायुतैः ॥ 49॥

बालद्विज+ सुहृन्मित्र, पितृ+ भ्रातृ+ गुरुद्रुहः, स्यान्+ निरयान्+ मोक्षो

मैंने बालक, ब्राह्मण, सम्बन्धी, मित्र, चाचा, ताऊ, भाई-बन्धु और गुरुजनों से द्रोह किया है। करोड़ों बरसों में भी नरक से मेरा छुटकारा नहीं हो सकता।

नैनो राज्ञः(फ्) प्रजाभर्तुर् - धर्मयुद्धे वधो द्विषाम् ।

इति मे न तु बोधाय, कल्पते शासनं(वँ)वचः ॥ 50॥

प्रजा+ भर्तुर्

यद्यपि शास्त्र का वचन है कि राजा यदि प्रजा का पालन करने के लिये धर्मयुद्ध में शत्रुओं को मारे तो उसे पाप नहीं लगता, फिर भी इससे मुझे संतोष नहीं होता।

स्त्रीणां(म्) मद्धतबन्धूनां(न्),द्रोहो योऽसाविहोत्थितः ।

कर्मभिर्गृहमेधीयैर्- नाहं(ङ्) कल्पो व्यपोहितुम् ॥ 51॥

मद्+ धत+ बन्धूनां(न्), योऽसावि+ होत्थितः, कर्मभिर् + गृह+ मेधीयैर्

स्त्रियों के पति और भाई-बन्धुओं को मारने से उनका मेरे द्वारा यहाँ जो अपराध हुआ है, उसका मैं गृहस्थोचित यज्ञ-यागादिकों के द्वारा मार्जन करने में समर्थ नहीं हूँ।

यथा पङ्केन पङ्काम्भः(स्),सुरया वा सुराकृतम् ।

भूतहत्यां(न्) तथैवैकां(न्), न यज्ञैर्मार्ष्टुमर्हति ॥ 52॥

यज्ञैर् + मार्ष्टु+ मर्हति

जैसे कीचड़ से गँदला जल स्वच्छ नहीं किया जा सकता, मदिरा से मदिरा की अपवित्रता नहीं मिटायी जा सकती, वैसे ही बहुत-से हिंसाबहुल यज्ञों के द्वारा एक भी प्राणी की हत्या का प्रायश्चित्त नहीं किया जा सकता।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहं(म्)स्यां(म्) सं(म्)हितायां(म्)

प्रथमस्कन्धे कुन्तीस्तुतिर्युधिष्ठिरानुतापो नामाष्टमोऽध्यायः ॥

ॐ पूर्णमदः(फ्) पूर्णमिदं(म्)पूर्णात्पूर्णमुदच्यते

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

ॐ शान्तिः(श्)शान्तिः(श्)शान्तिः।।